खुली किताब

उपाध्याय गुप्तिसागर मुनि

साहित्य भारती प्रकाशन
1998

खुली किताब
उपाध्याय गुप्तिसागर मुनि

सम्पादन गुलाव खेतान काठमाण्डू (नेपाल)
रेखाचित्र सतोष जडिया, इन्दौर
के एल शर्मा, दिल्ली

1993 प्रथम सस्करण, 2200 प्रतियाँ
1998 सशोधित एव सम्वर्धित
द्वितीय सस्करण, 2000 प्रतियाँ

पावन प्रसग
भारत की स्वतत्रता की स्वर्ण जयती

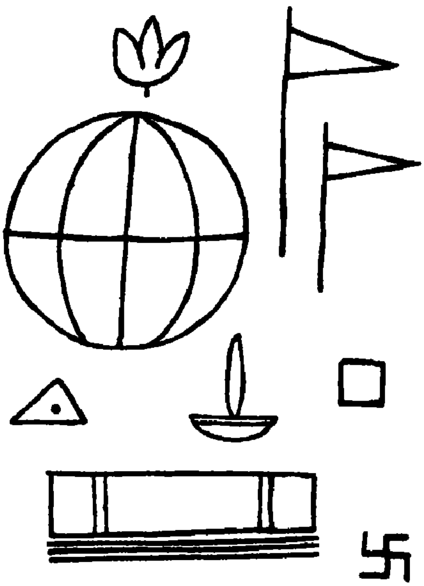
अमूल्य अर्पण
सुभाष जैन
R-14/28 राजनगर, गाजियावाद (उ प्र)

प्राप्ति स्थान
उपाध्याय गुप्तिसागर साहित्य सस्थान
215 कालानी नगर, इन्दौर (म प्र)

अरिहन्त साहित्य सदन
4 रेनवा विहार, मेरठ रोड, मुजफ्फरनगर (उ प्र)

लागत मूल्य रु 30/-

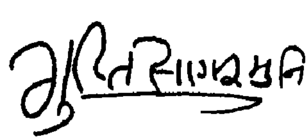
मुद्रण
विकल्प प्रिंटर्स, अनेकान्त पैलस, 29 राजपुर राड, देहरादून - 248 001



राष्ट्र के उन्नयनार्थ

राष्ट्र प्रेमियों को

आशीर्वाद...



उपाध्याय मुनिश्री गुप्तिसागर जी की मौलिक कृतियाँ

विद्यांजलि, शिवशाला, पुरुषार्थ की विजय, खुली किताब, दहेज न महज,
शाकाहार समाधान, परम पुरुष, पर्युषण आत्मप्रकाश की दीपमालिका,
मंगलाचरण, किसने मेरे ख्याल में दीपक जला दिया, व्यसनों के पार,
तीर्थंकर ऋषभ का अनन्य अवदान जीवन की संपूर्ण कलाएँ, माँ भारती,
महावीर समय के हस्ताक्षर, शारदा स्तुतिरियम, मैं अकेला ही चलूँगा मंजिलों तक,
हिमालय की गोद में, नापाक इरादों को मंजिल नहीं मिलती, संजीवनी शतक,
मयंक लहा चरित (प्रकाशनाधीन)

'खुली किताब'
1993 से 1997 के मध्य रचित कविताएँ

अचूक-शरण

पञ्चम युग के तम-प्रलयकर। तीर्थंकर। शकर।
बाह्य शक्ति के प्रणिधान का
चिरन्तन अभ्यास तज
आत्म प्रणिधान मे रमण किए,
कायरता
परावलम्बन दूर भगा
मुक्ति-कान्त बाट जाहत
चिरन्तन डगमगाती जीवन नया
सरक्षण पाती।
सकटो का सामना करत
जीवन म निशक
काया मे निर्मम
याग क्षेम स परिपूर्ण
प्रति समय मूर्तामूर्त मे जग छडे
मूर्त कर्मो का नशाते/नष्ट करते
नित नवीन का स्वागत करते
पराभूत को बधाई दे
बढ रहे लक्ष्य की ओर
पाथेय की अन्वेषणा करते
प्रज्ञा की गवेषणा करते, कि
पुग-प्रज्ञा दिखे
आर झट डुबकी लगाऊँ उसमे।

खड़े-खड़े बाट जोहे
चतुर्गति चौराहे पर निहत्थे।
पाथेय बने वयोवृद्ध-
ऋषि श्रेष्ठ आचार्य ज्ञानसागरजी।
महाभिनिष्क्रमण कर
असिधारी
पद यात्री
चले आकिञ्चन्य बन
विभू बनने
बस!
एक ही तमन्ना दिल मे सँजोये
सान्ध्य-सुबह-दोपहर
एक ही रटन
विभू-बनना-विभू!
उन्हीं का प्रणिधान
उन्हीं की प्रज्ञा
चिन्तन, मनन चलता।
इन्हें देख दूरियों से आ रहा
कोई अन्तहीन विलाप
चीखता, क्रन्दन करता
दारूण रुदनों का समवेत प्रलाप
उफ! संघर्ष
यातना, रोग, जरा और मृत्यु का अटूट सिलसिला
परन्तु सब में सहज वृत्ति
जीवन और मृत्यु के प्रति अनासक्त
पुलकित मन बढ़ रहे।
पथक में आते
अटके-भटकों को हिदायतें दे,
भूसात् को उठाते/गति दे,

खुद-ब-खुद
आशु गति से बढ़ रहे
मुझ किंकर को लिए
सहारा दिये,
क्षण-क्षण मेरे ज्ञान-मन मे तरगायित होते
मम गुरु विद्यासागर।
जिनमें लगभग समाप्त होने को है
भोक्ता, भोग्य और भोग की दूरी।
अनासक्त भाव मे क्षुत्पिपासा
विधि-विधान से पूर्ण करते,
हर योग प्रणिधान मे
दुरन्त नई-नई-तरगे उठती
तथापि
प्राण और मन चञ्चल न किये
ग्रीष्म की लू भरी
दाहक हवाएँ
शीत का शीत भरी
मारक हवाए,
सागर तक प्रकृति को झुलसाती/जलाती
बावजूद उसके
अपनी टेक न छोड़
ग्रीष्म-शीत योग धारते
स्व-रथ का
स्वयम् सारथ्य कर
हर बर्फ मे सजे
बर्फीले पाषाणों/पर्वतो को छाती से बींधते
आंधी तूफानो को
वर्षा की हर उद्दण्ड दिवस-रातो को
हहराते भयावह अरण्यो को

अपनी बाहों में भींचते
सुख-चैन
कदम-दर-कदम बढ़ाते
बरकरार है यात्रा, युगों से
आस्था हृदय सजोय
लक्ष्य बाँधते
मुक्त आकिञ्चन्य के साथ
चरम चरण
चरम की ओर बढ़ रहे
पूर्ण विश्वास के साथ।
अंतिम चरण
अंतिम चरण में
प्राप्त होंगे नियम से।
गुरु चरण
में शरण
पल-पल नमन
और परम पुनीत
कल्याण मित्र
तीर्थंकर महावीर की
पच्चीस सौ बीस वीं निर्वाण बेला में
'खुली किताब' काव्य संग्रह सृजन
अतिशय क्षेत्र गोम्मटगिरि इन्दौर में
निर्विघ्न पूर्ण हुआ।

गुरुचरणारविन्दचंचरीक

गुप्तिसागर मुनि

उपाध्याय गुप्तिसागर मुनि

■

अनुक्रम

■ ■ ■ ■ ■

उपाध्याय गुप्तिसागर मुनि

दीक्षा-पूर्व नाम	नवीनकुमार जैन
जन्म स्थान	गढ़ाकोटा सागर, मध्यप्रदेश
जन्म-तिथि	4 दिसम्बर 1957
मुनि-दीक्षा	सिद्ध क्षेत्र नैनागिरि, 20 अगस्त 1982
दीक्षा-गुरु	आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

उद्देश्य

जीवन का
एक मात्र
उद्देश्य हा,
हम
जैम हे,
वैसे दिखे
और
जेस
वन मकत हे
वेस
वनें।

❖



वे लोग

कौन
क्या कहता, सोचता है?
इस पर
विचार न कर
वही करना
जो उचित हो
धर्म में
जन-जीवन मे,
फिर देखना
जीवन वृक्ष पर
सुन्दर-सुगन्धित
सुमन-ही-सुमन।



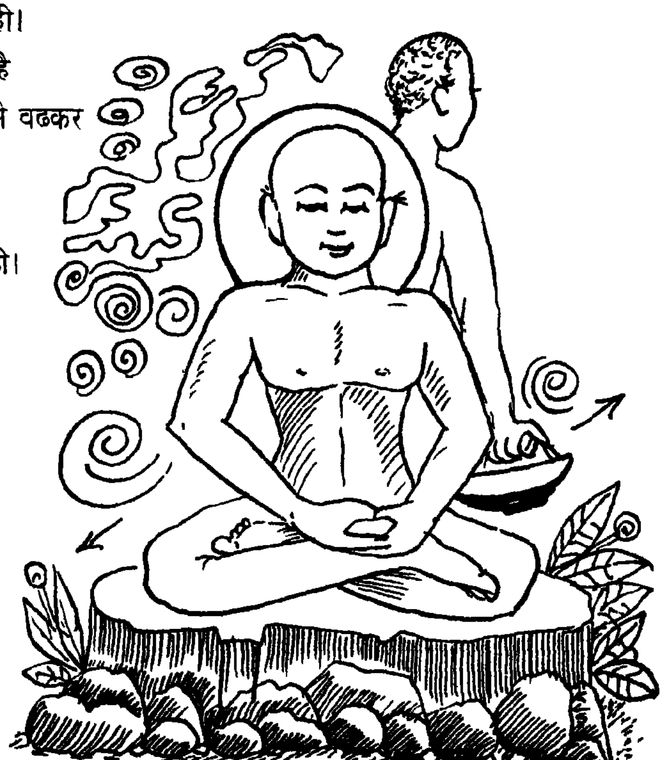
ओर हॉ,
इन सुमनों से भी
दुख पायेंगे
वे लोग
जो कहते
केवल कहते है
कभी उपकार नही करते
वे लोग।

❖

मेरा अनुभव है

न यहाँ
कुछ है
न वहाँ।
जहॉ कही जाता
देखता हूँ
तो
वहॉ भी
किञ्चित् सारभूत
दिखता ही नही।
मेरा अनुभव है
आत्मानुभव से वढकर
जगत मे
अन्य
कुछ है ही नही।

❖



वासनाओं से विरक्त

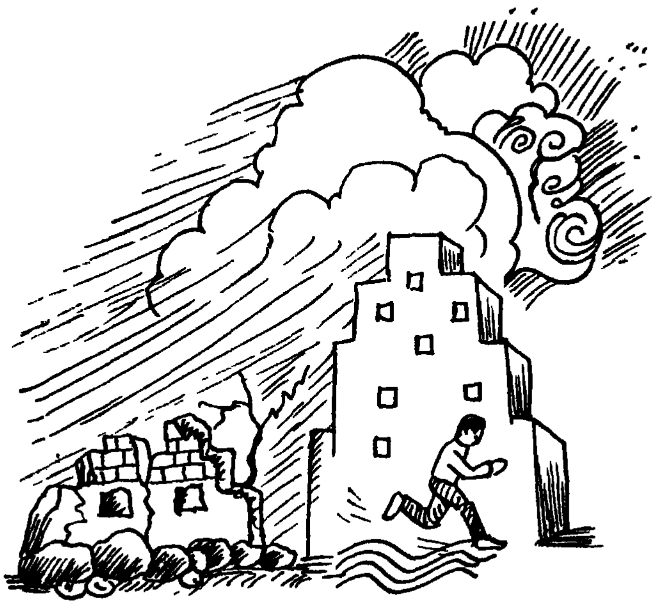
क्यो रटता है
प्रभु को
दिन-रैन?
जब
तेरा चित्त
वासनाओ से भरा है।
ज्ञात तथ्य है,
वासनाओ से विरक्त
रिक्त-चित्त
होना ही
प्रभु का सच्चा
जप और तप है।

❖



तेरा क्या भरोसा?

धुए की धरोहर
तेरा
क्या भरोसा?
हवा बही, कि
तू गयी,
पर,
वाह रे पुद्गल!
तू तो इससे भी आगे का निकला
तुझे
हवा, निमित्त की भी
जरूरत नही है



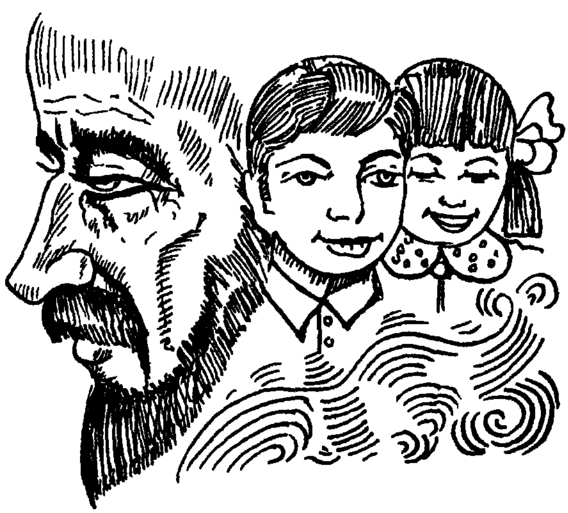
हॉ,
याद आया
तेरा स्वभाव ही
गलन-पूरण है
बिना पुरुषार्थ
प्रतिपल गल रहा है
और, फिर भी
तेरे स्वभाव से
चिर-परिचित मानव
तेरे प्रति
अन्धा बना
अधाधुन्ध
धावमान।

❖

अतिक्रमण

बूढे का मन
परेशान है
वच्चो को
नित नयी-नयी चीजे
लाते/खाते देख
मौज मस्ती करते
मुस्कुराते देख।
और
आखिर एक दिन वह
कर ही गया अतिक्रमण
फिर क्या?
खुल गया सहज
एक ओर अध्याय
नूतन ससार।

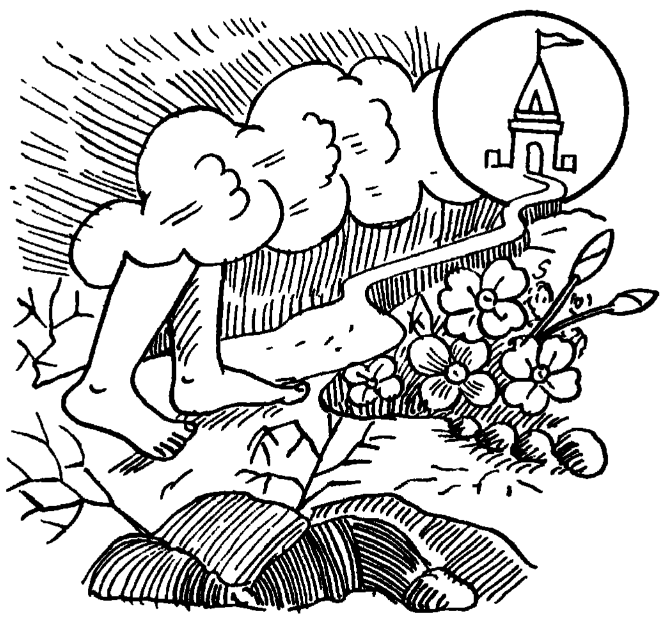
❖



गन्तव्य

मेरा
अपना कोई
कुछ भी नही है
मान्यता थी, तो
वहुत दौडा
लेकिन
चोट लगी
तो वापिस आ गया
गन्तव्य पर।
हाँ,
जव जागा
तभी प्रभात।

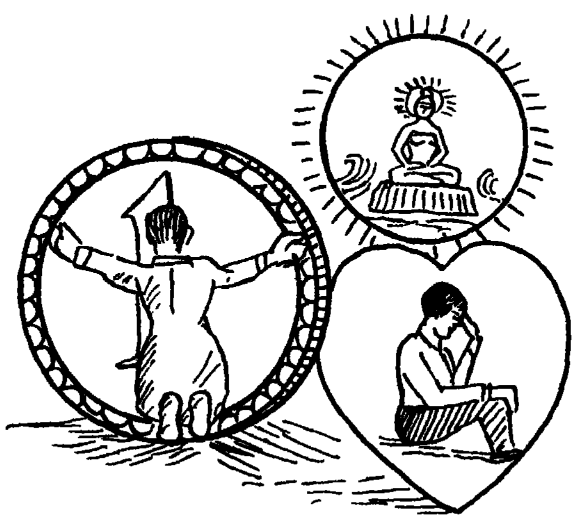
❖



सोच न करना

जब
गमन हो
गन्तव्य की ओर
तो
सोच न करना
मार्ग मे,
प्रतिकूल/अनुकूल
माहौल मे
फिर
निश्चित जानना
मजिल
निकट है
प्रत्यक्ष
सामने।

❖



हर-बार नये नये

हमने
जख्मो को
भरने की सोची
पर
वे हर-बार
नये नये होते गये।

❖



कुछ, इस कदर

हम
जाना चाहते है
कुछ
इस कदर
कि
लौटना न पडे।
लौटना
ससार है
दुख है
विप वृक्ष।

❖



अकेलापन ही जीवन

जब
मै चला था
तो अकेला था
और
आज भी
अकेला ही हूँ
किन्तु
पथ मे
कभी-कभार
वर्तमान,
वर्तन-प्रवर्तन में
लगता है सूनापन
मन को,

पर
रे मन ।
वरदान है
अकेलापन
यही है जीवन
वस्तुत ।

❖



बन्धन है मान्यता

बन्धन है
मान्यताओ का नाम
जिसे न समझे
प्रमत्त-मन
उन्हे
भ्रमण-भटकन है
परिणाम
आज भी है
स्पष्ट है, प्रत्यक्ष है
विष्टप-वीथियो मे
अनन्त से।

❖



भटके है घर में

हम
घर से वाहर
भटके होते
तो
कोई पहुँचा देता घर,
भटके है घर मे
कैसे पाये
ठौर-ठिकाना।

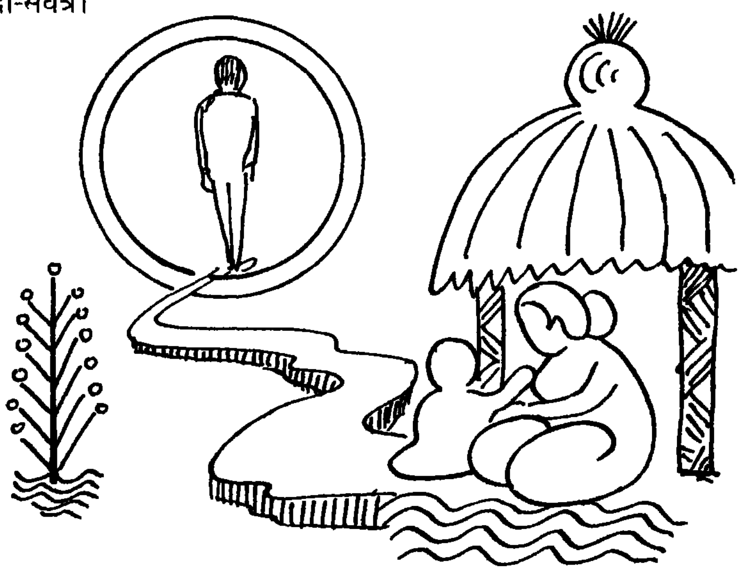
❖



कुटिया को फूँक

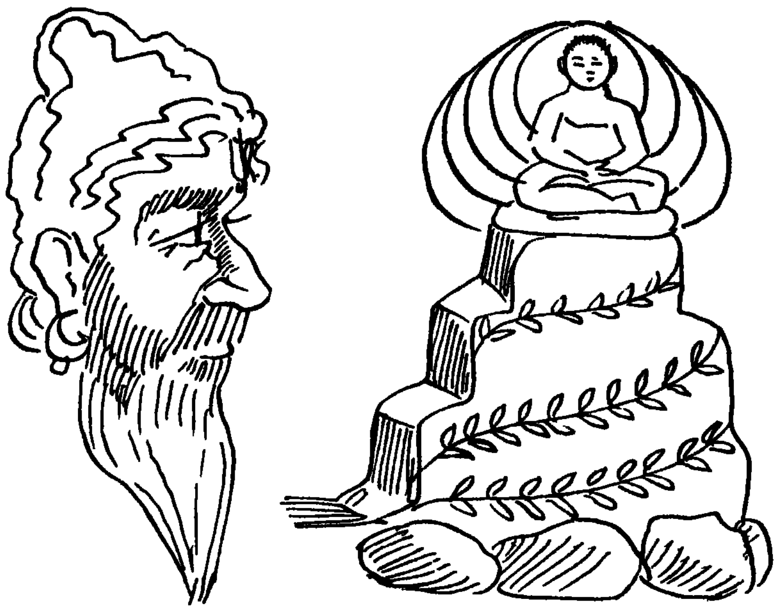
कुटिया को फूँक
कितने है आज
चलने वाले?
किसे नही मालूम,
फिर भी –
व्याख्यान
प्रवचन।
क्यो? किसलिए?
मात्र प्रदर्शन
और
कव तक?
चलता ही रहेगा क्या,
सदा-सर्वत्र।

❖



एकदम गलत

वय मे बडा
लगभग
हर आदमी
सोचता है
अपने को बडा
अधिक समझदार,
और
सामने वाले को
कम-समझ, या
ना-समझदार,
किन्तु
यह गणित
एक-दम गलत है



कारण
बहुत स्पष्ट है
साफ है।
ज्ञान को
उम्र से देखना
मापना ही
ना-समझ है
अज्ञान है।

❖

अहंकार की बूँ

प्रेम की
रुखी-सूखी ही
स्वाद देती है
वाकी मे
अहकार की बूँ होती है।
शायद इसी से
बालक की दृष्टि
निर्विकार-दूध पर होती है,
और
साधक की
वीतराग फलो पर।

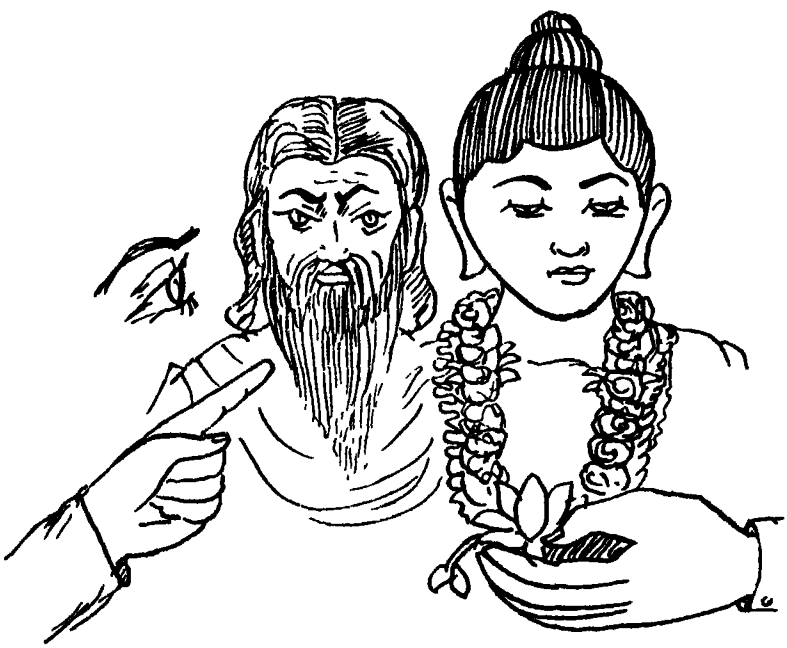


शेष
मोह-माया मे फॅसे जीवो की
सविकार-दृष्टि
सब पर होती है
इसीलिए
घी-चुपडी
सरस भी
दुखकर होती है।

❖

कहते भला-बुरा

स्वार्थों की धुन्ध मे
सन्त को भी
कहाँ छाडा श्रावक न
कहते भला-वुरा
और



स्वार्थों की पुष्टि मे
मान-सम्मान की लब्धि मे
भगवन्त कह
क्षण-क्षण पुकारे
गौरव प्रदान करे
भाग्यविधाता कहते
फिर तुम्ही बताओ –
क्या इस विशुद्धि मे
मिल सकता है राजमार्ग?
या कि
चल सकता है शिवमार्ग?
नही
यह तो
गगन कुसुम की तरह है।

❖

वीरता : दो कविताएं

एक

वीरता का परिचय
वाणी से नही
आचरण से होता है जहा,
वहा प्रकट होती है
अहिसा मा
फिर
भय किसका? कहा?
सदा निर्भय
वीरता मे।



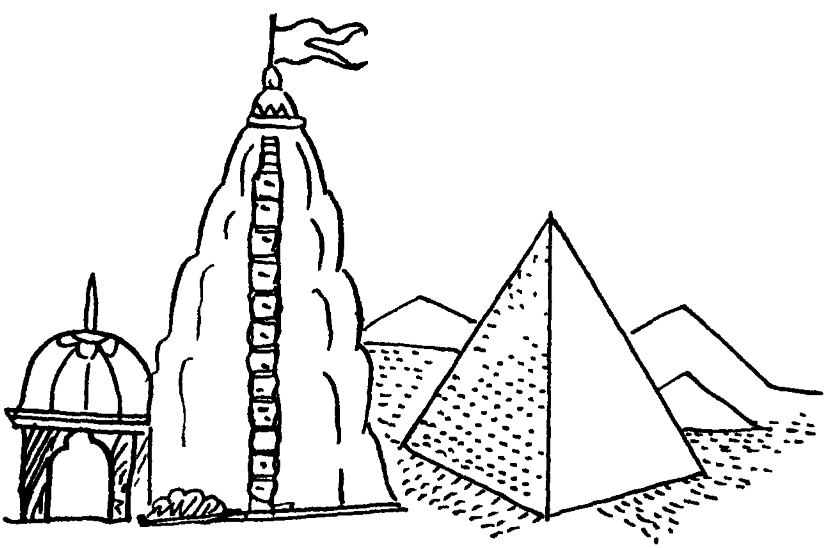
दो वीरता का परिचय
महावीर का परिचय है
जिसे धारण किया है
वीर के उपासको ने
उसी का परिचय
मै दे रहा हूँ प्रतिपल
वीर-चर्या से।

❖

सेवा : तीन कविताएं

एक

सेवा
समाज की रीढ है
और
रीढ विना जीव
जी नही सकता
अस्तित्व विहीन हो
गिरा है सदा,
इसीलिए
सेवा
जीवन मे आवश्यक ही नही
अनिवार्य है, रही है।



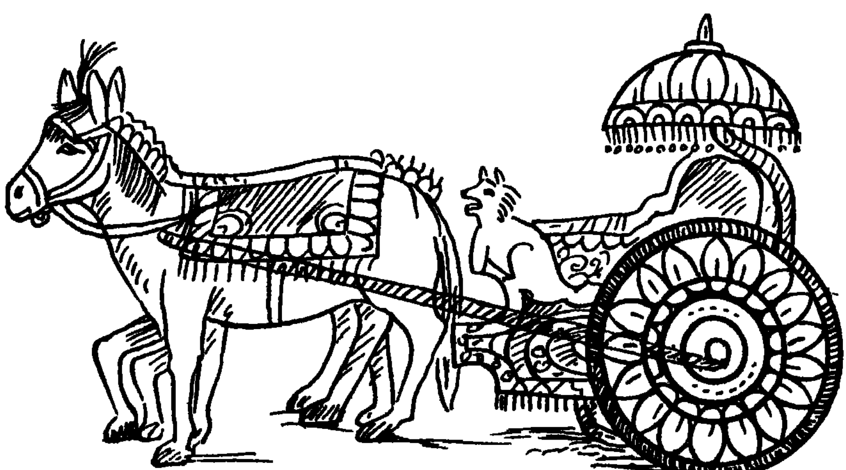
दो जिन्होने
सेवा को सराहा है
उन्होने
पाया है सहारा।
जिन्होंने
सेवा को किया है किनारा
उन्होने
दखा है जीवन मे
विकट-मरुस्थल-सहारा।

तीन जिग्म
मवा क पीछ
तालियो की गडगडाहट नही
मगर
प्रभु का
गुरु का
मच्चा आशीर्वाद है
वही
सच्ची मवा है
फलवती हे
सफल है।

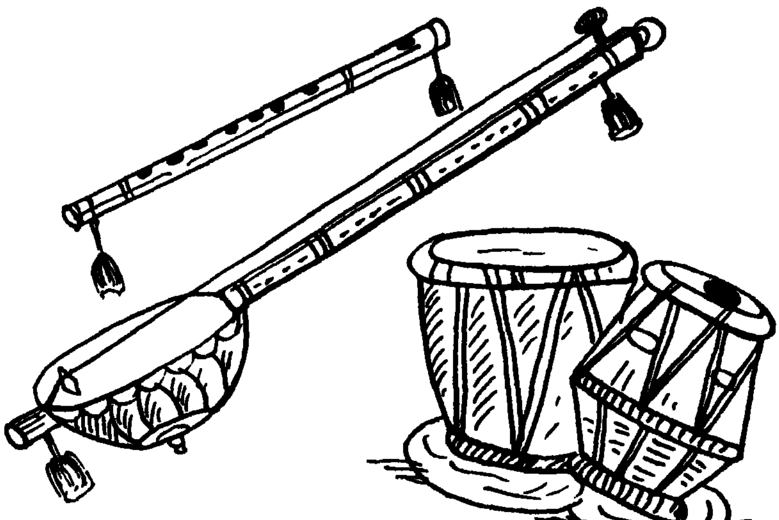
❖

समाज : चार कविताएं

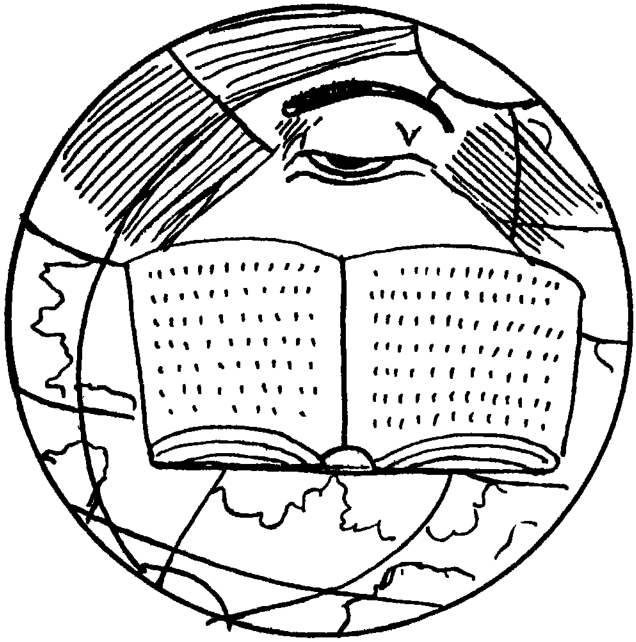
एक : समाज
एक
ऐसा रथ है
इसे
जहा मोडो
मुड जायेगा।



दो· समाज
एक
ऐसी वासुरी है
जैसा स्वर निकालो
वैसा ही निकले।



तीनः समाज
एक सगीत है
वह बजता रहे
और आप
निर्वेग सुनते रहो।



चार समाज
एक समयसार है
पढने को
विवेक की सुलोचना हो, तो
फिर देख लो
अर्थ वही देगी
जो
भगवान ने कहा।

❖

अन्दाज : पाँच कविताएं

एक सुख का अन्दाज
लगाया जा सकता है
जीव की प्रवृत्ति
और
निवृत्ति से।

दो प्यार का अन्दाज
किया जा सकता है
जीव के
सद्-असद्
व्यवहार-बर्ताव से।

तीनः उत्थान का अन्दाज
लगाया जा सकता है
जीव के
शुभ्र-स्वच्छ
सदाचरण से।



चार. सत्य का अन्दाज
किया जा सकता है
जीव के
मुख-तेज
प्रभा-मण्डल से।

पांच· धर्म का अन्दाज
लगाया जा सकता है
जीव के
दया-अदया भाव
स्वभाव से।

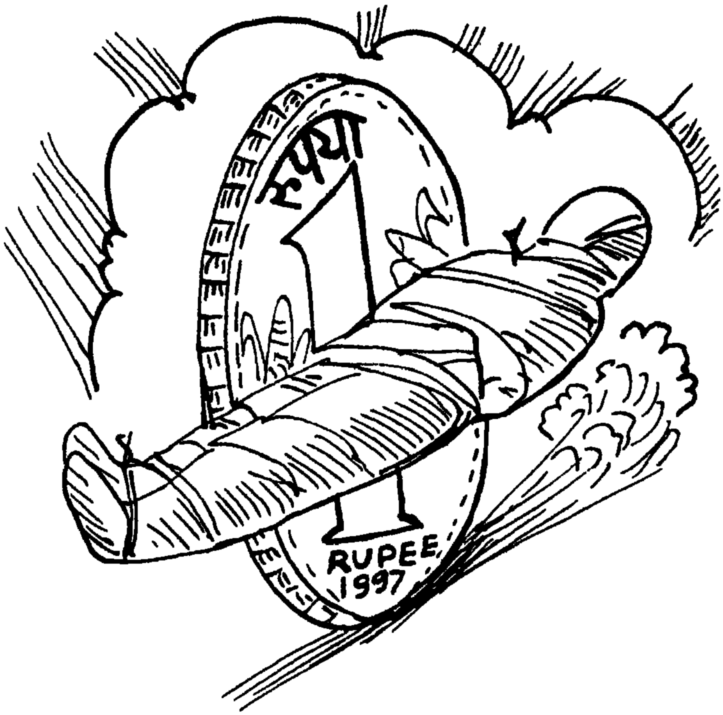
❖

मृत्यु : चार कविताएं

एक· जब से
अपने से पृथक्
दूसरे को
अपना माना है,
तभी से
जीते-जी
मौत-जैसा-अनुभव
मन को ठिकाना है।

दो मौत
राम ने भी पाई, तो
रावण ने भी,
लेकिन
जीवन दर्शन-चिन्तन
अलग-अलग होने से
स्वर्ग और नर्क का
क्रमश दर्शन देखा।

तीन मृत्यु है
विश्राम स्थल,
दबे-दबे पाव आती है
तो आने दो
दस्तक देने पर
दहशत का क्या काम?

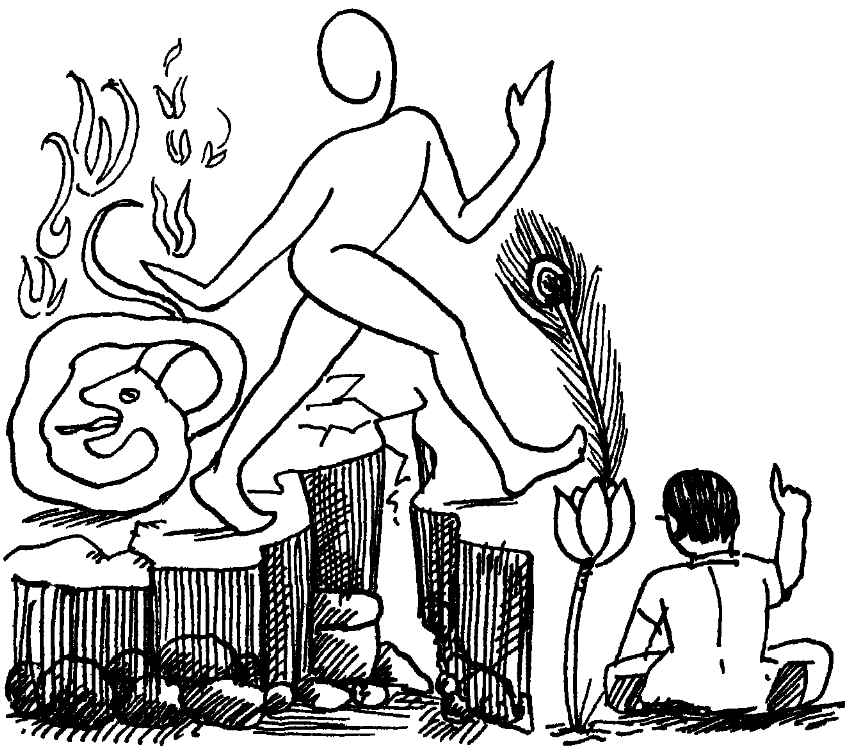


चार मौत
कोई और चीज नही
वह है
सिक्के की दूसरी बाजू
जहाँ नीरव शान्ति है
निपट सुख-चैन।

❖

आचरणीय : तीन कविताएं

एक· प्रतिक्रमण का अर्थ है
वापसी
यानी
अशुभ परिणाम पूर्वक
किए गये दोषों का परिहार
एव
सत्य-अहिसादि व्रतो की
पुनर्दीक्षा।



दो· प्रत्याख्यान के मायने
अघ-कारक
अयोग्य नाम, स्थापना,
द्रव्य, क्षेत्र, काल व
भाव का
त्रियोग से
परित्याग।

तीन. और
आलोचना है
बालक की तरह
सरल, निश्छल मनीषा से
बाहरी-भीतरी
सम्पूर्ण उपाधि की –
समीक्षा कर
अपने से दूर करना।

❖

परेशानी : दो कविताएं

एक

मा की परेशानी है
बेटे की पतग,
और
बेटे की परेशानी है
मा का निषेध।
दोनों मे भाव छुपा है
सुख-शान्ति
लेकिन
दोनो परेशान है
एक-दूसरे से।



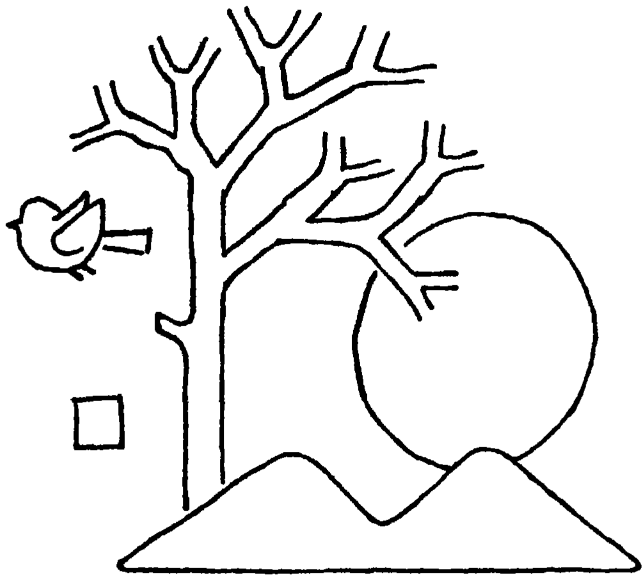


दो आज
परेशानी है
उन लोगो से
जो मित्र बन
विष-बीज बोते है
और
शान्त माहौल क्षुब्ध कर
नारद की तरह
आनदित होते हैं
अनवरत।

❖

खुली किताब

प्रकृति
खुली किताब है
समयसार है।
विवेक
और
श्रद्धा की आँख से
पढ़ा जा सकता है
इस खुली किताब को,
और तभी
अपना और परायो का जीवन
अपना और परायों का दुख-दर्द

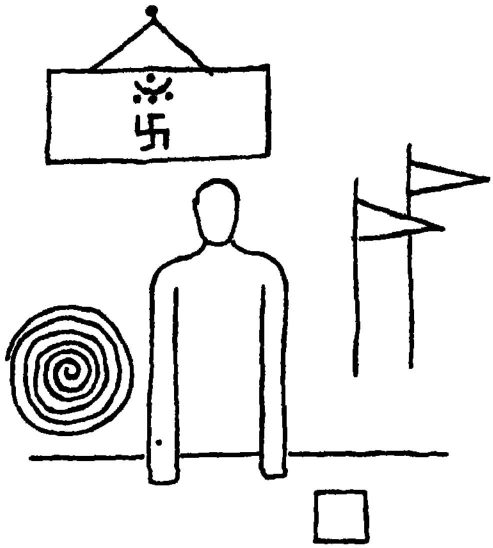


अपना और परायो का स्वभाव
समझा सकेगी यह किताब।
साथ ही
अपने और पराये का
अस्तित्व बोध करा
निर्भय बना सकेगी
यह किताब।
सवेग-वैराग्य बढ़ा
प्रकृति का दर्शन करा
प्रगति के पथ पर ले जा सकेगी
यह खुली किताब।

❖

नाम और पता बदला

मैंने
अपना नाम, और
पता बदल लिया
यह हर गली
शहर वालो को ज्ञात है।
पता बदलना,
यानी
पतन की राह से मुड़
मोक्ष-पथ अपनाना है।
पूर्व पता तो
एक शाप था
अपने आप में
एक पाप था,



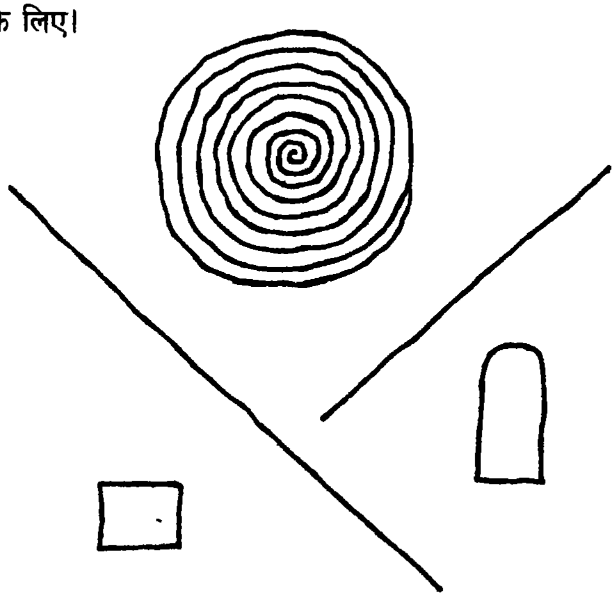
इस कारण,
'स्व' का
सम्यक् पता पाने
विजय पताका फहराने
गोता लगा रहा, निज मे,
और
डूबता-उतराता
गहराईयो को पार करता जा रहा हूँ,
निज का रमण
निज में करता जा रहा हूँ।
हाँ, निज का पता पाने।
विजय की पताका फहराने
एक नयी यात्रा पर जा रहा हूँ।

❖

अफवाहों पर सेंसर

अफवाहे
आधार हीन होतीं हैं
काली, कजराली होतीं हैं
हम-तुम से टकरातीं है
दरारे बनातीं हैं
और
चलीं जातीं हैं
अस्तु,
मैने सैसर लगाया है
अफवाहो के सुनने पर
दरारो और तकरारो से बचने
और
बचाने के लिए।

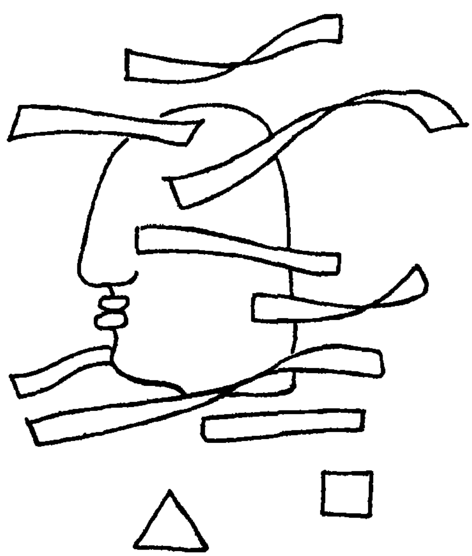
❖



विचारों की कतरनें

विचारों की कतरने
खुले बाजार मे
वारागनाओ की तरह
आवारा घूमतीं है।
इच्छाएँ, वासनाएँ बढ़ रहीं है
और
देह
जवाव दे रही हे, कि
अव चला नहीं जाता
फिर भी
उसे चला रहीं है
रात-दिन
विचारो की कतरन।

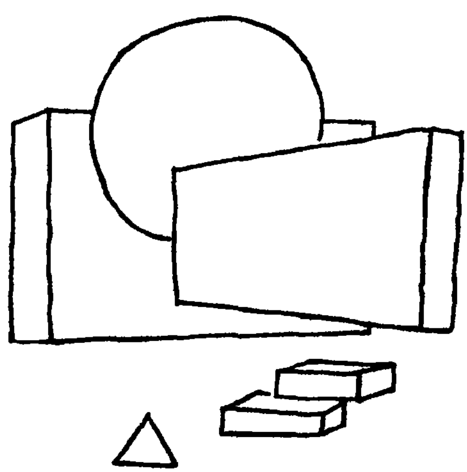
❖



भ्रान्ति

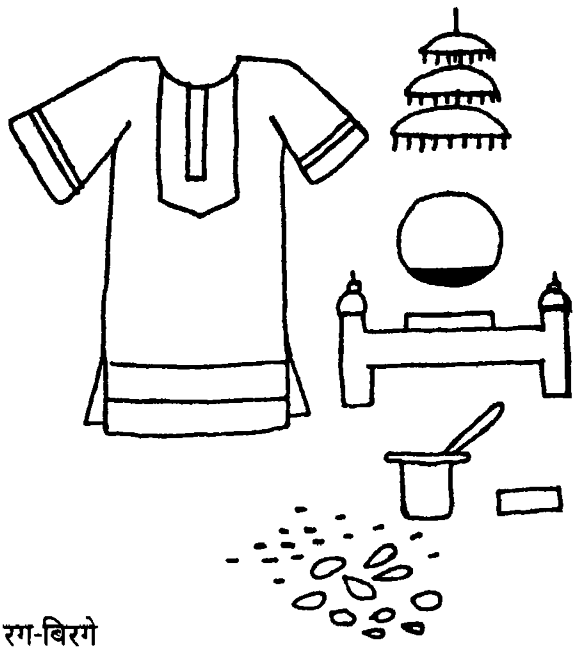
आत्मा
दोहरी दीवार मे बन्द है,
बाहर
सघन अन्धकार है
जिसमे
दिनकर की प्रभा का भान भी
प्राय दुष्कर है,
दिनकर है या नहीं
बताना मुश्किल है,
यह मानव
मान वैठा है
अन्धकार को प्रकाश
और
दीवार को आत्मा,
इसी भ्रान्ति में
जिये जा रहा है
अनवरत।

❖



विकारों का हाट

मानवीय चेतना के धरातल पर
उघड़ती सुबकती
वासनाओं, विकारों के,
साक्षी है –
उनके पहनावे
और वस्त्र।
आज
मन्दिर-मस्जिद मे
भक्ति-इबादत नहीं
दर्शन नहीं
कोरा प्रदर्शन है वस्त्रों का।



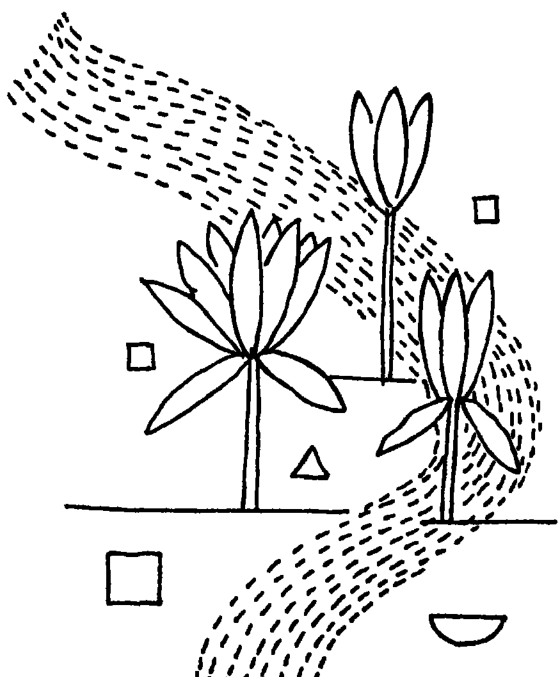
ढीले-ढाले, रग-बिरगे
झाम-झल्ले पहिन
प्रभु-शाला जाते
दर्शको को दिखाते
विशिख लुभाते
और मन
प्रभु भक्ति से हटा
वस्त्रों पर लगा
पाप-पक में डुबाते,
मजिल भुला
भव में घुमाते
ये रग बिरगे
झाम-झल्ले वाले।

❖

जीवन-बगिया

जीवन बगिया में
कुछ
ऐसे फूल खिलाओ,
जिससे आसपास का वातास
मगलमय हो,
प्राणी मात्र मे
खुशियो का सचार हो
और
माँ-प्रकृति की गोद
दृष्टि-गोचर हो
हरी-भरी।

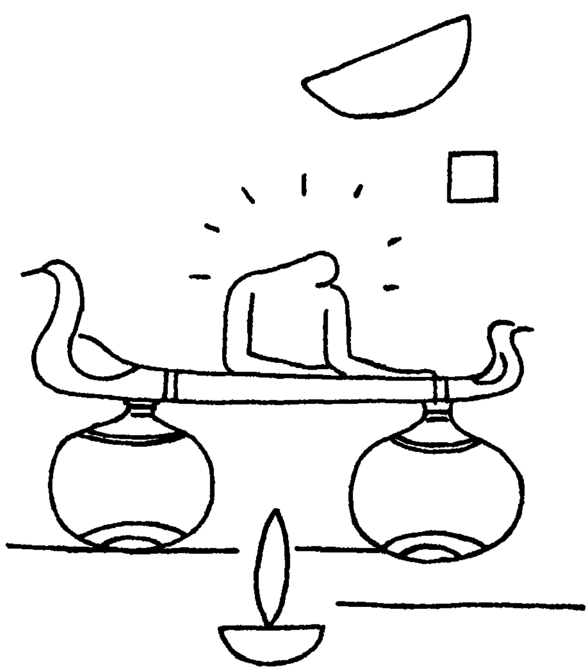
❖



भगवद्-भक्ति

भगवद्-भक्ति
चेतना को
ऊर्ध्वमुखी बना
जीवन वीणा को
झकृत
आनदित कर
नित-नवीन
ज्योति प्रदान करती है।

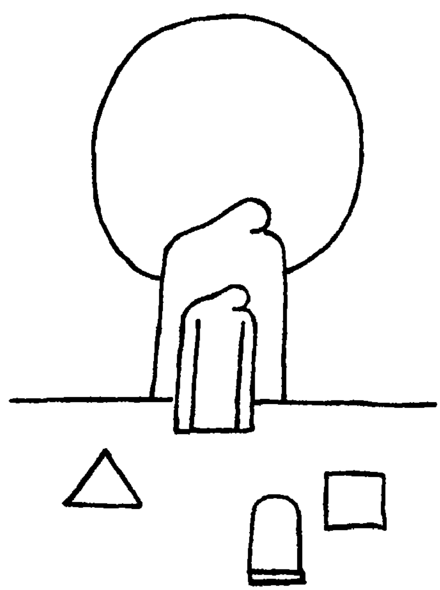
❖



आत्मलक्षी पर्व

जैन सस्कृति का
सर्वोपरि
आत्मलक्षी पर्व
पर्यूषण।
विकारो के रेचन का सूत्र
बाह्य-अभ्यन्तर पदार्थों के
विच्छेदन की प्रक्रिया
आत्मोत्कर्ष की तैयारी
शुद्धात्म स्वभाव के
चिन्तन, मनन की
रुचिर घडी
अर्थात्
शरीर से
आत्मा की ओर सक्रान्ति
और
आत्मा से
परमात्म पद
पाने का रास्ता।

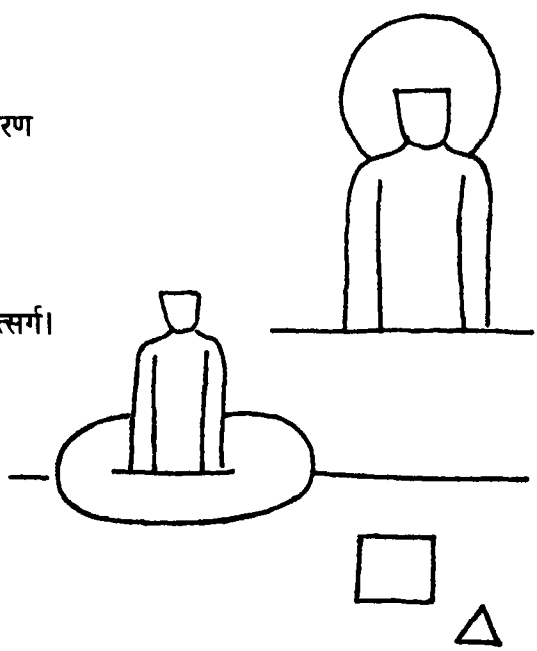
❖



विश्वास की कसौटी

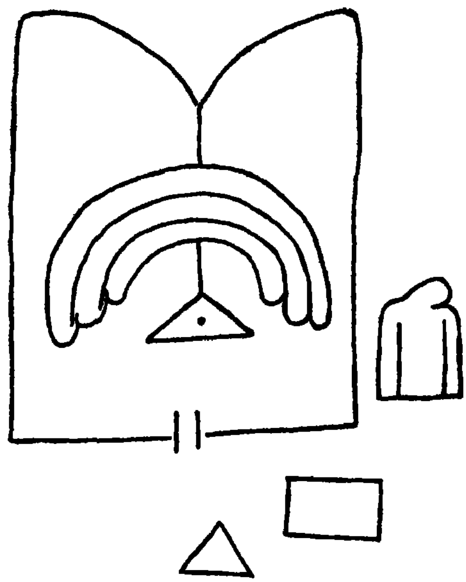
बँधे-बँधाये दायरों से
बाहर आने का नाम है
पर्यूषण,
जो है –
मनुष्यो के आचार-विचार
और
विश्वास परखने की कसौटी
जिसमे
कषायो का विसर्जन
आत्म नमन
वक्रता रहित
शौच परिणाम
सत्य
विनिर्मल पवित्र आचरण
सम्यक् तप त्याग
परिपूर्ण आकिञ्चन्य
तथा च
ब्रह्मोपसना का चरमोत्सर्ग।

❖



द्वन्द्वों के पार

आत्मा पर
काम-क्रोध-लोभ
मोहादि का मुलम्मा
विभाव-भाव
भार ही तो हैं,
किन्तु
दिग्भ्रान्त
बहु-व्यामोही
कहाँ समझते इन्हे भार।
वे हार समझ
हर हार को
जीत समझते हैं
और
असलियत से दूर
भव-सागर-मरु में
हरिण की तरह
कुलाँचे भर,

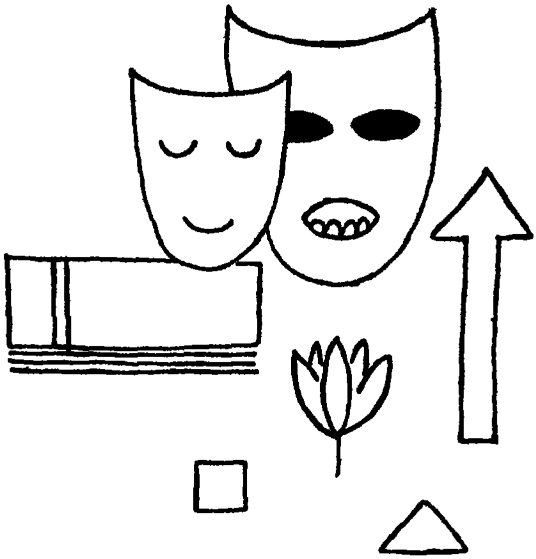


ध्यान से
ध्यान-अध्ययन की बाते कर
अभिनय करते, कराते
व्यर्थ उन्माद में
व्यथा मोल लेते
जब-व्यसन कारणों को बुनते है
सुख-शान्ति के अन्वेषण में,
जो है –
द्वन्द्वों से पार
निश्चेष्ट
शैल की तरह
जीने में।

❖

दिखावा

गिद्ध की तरह पख फैलाये
दिखावे मे
बढ-चढ़कर
हर-समय
भ्रम प्रवर्त्त-मानव
अपनी तीखी चोंच से
काट-छाट-सन्तोष
बहुतों से
मधुर सबध विच्छेदकर
बुनियादी सूत्रों को बिसराता
असली चेहरा



खूँटी पर टाँग
मुखौटा लगा
मदिर-मस्जिदों मे दाखिला ले
भेद-विज्ञान की वार्ता करता
हिताहित समीकरण सिखाता
और .
आध्यात्मिक गौरव-बोध से
सम्मानित होता
शास्तर/पोथियो के
क्षायोपशमिक ज्ञान से।
वही चेहरा
सदन वापिसी में
प्रतिपल
प्रतिपग
जमीन जायजाद आदि से जुड़ा

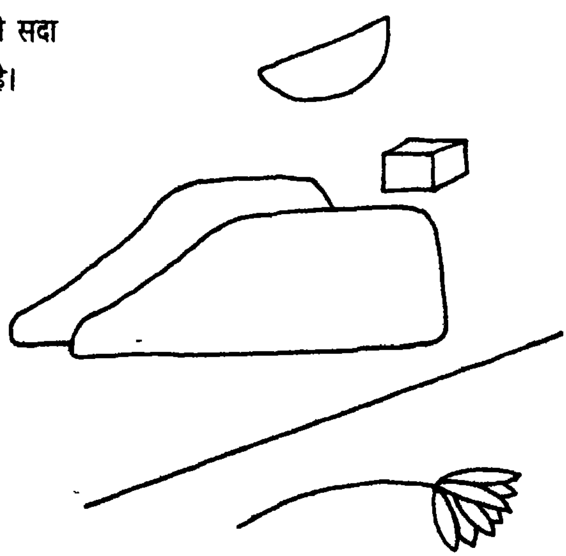
जग-प्रपञ्च
आडम्बर में फँस
भाँति-भाँति के भेषों को स्वीकृति दे
पर्दे के भीतर
दर्दुर की तरह
और बाहर
ग्राम शार्दूल की तरह
शक्ति प्रदर्शित कर
हतप्रभ कर
बहिरग
रग-बिरगियों, दुन्दुभियों
शोर-शराबे मे
विश्वास रखता है
यहाँ तक, कि
सुघड सयत-जन
व्रत-उपवास वेला-तेलादि कर
भव्य प्रदर्शन।
भो प्राणिन्!
फिर कहाँ रहा –
दृढ़ चिन्तन, मनन?
साधना का,
प्रदर्शन नहीं
दर्शन का।

❖

सदा हरा

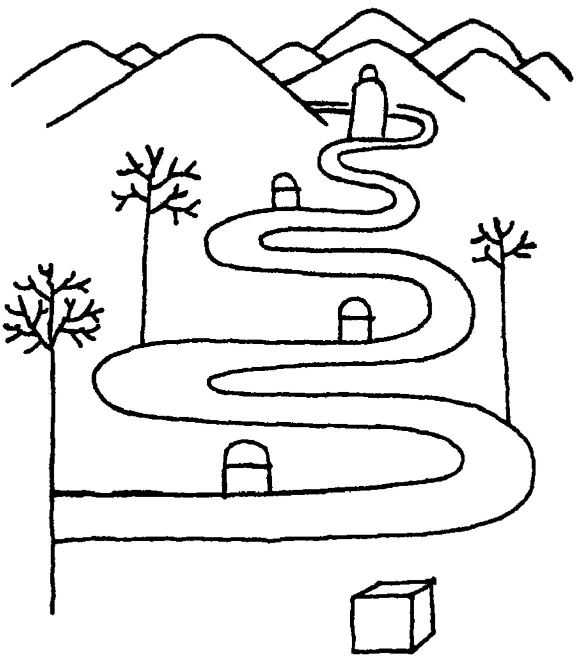
सुमन-परिपान्थिक को
जन्मन मे
अधम/नीच कहा जाता है।
पर-पदार्थों पर
बलात्
हमला करने वालों को
सुभट/बलजोर कहा जाता है
सचमुच ही
जड कद्रेताओ ने
वस्तुओं का मूल्य बढ़ा
ऊपर चढ़ा
चेतन को नीचे गिराया है
और
इसी से दु ख को सदा
हरा-भरा पाया है।

❖



न्याय का पक्षधर

आज मानव
अपने वर्चस्व
अपने प्रभाव
मान-सम्मान की ललक में
दूसरे के निर्मल चारित्र
व्यक्तित्व पर लाञ्छन लगा
अपने को पाते है बडा
सत्यासत्य पचा।
परलोक वाञ्छा से रहित
सम्प्रति शुभेच्छु
शावासी के भूखे
कुपथ पर देखे है
जाते हुए मॉ।
अरे।
और तो और
सुपथ पर लगे सन्त भी
लौट रहे है आज पीछे
बडा दुख होता है
देख-देखकर
सुन-सुनकर
इन जडाशयी



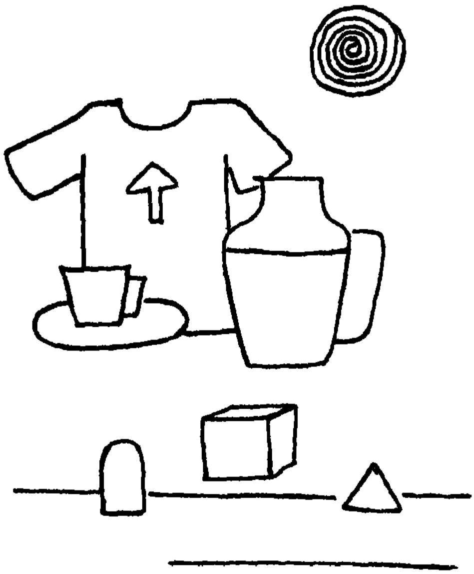
जड जनो को।
हे मा!
अब बोध दे, शिक्षा दे
कि
कहीं दूर जा
डूब जाऊँ
व्योम मे,
या कि दूर जा
डूब जाऊँ निज मे
न देखूँ आजव।
ये बहु-सख्यक लोग

अल्पों पर
चढाते अपना रग
और
सुर्ख नयन दिखा
पल-पल चिढ़ाते
अनर्गल वचन चेष्टाओं से।
जो रुच्य नही मुझे
कैसे करूँ कृतिकर्म
चलते है उलट
विलोम पद्धति से ये।
माँ!
मै न्याय का पक्षधर हूँ
अन्याय का नही
भले, वे प्रज्ञाशील हो,
पर साथ, उनका नही
उनका दूँगा सदा,
जो है –
प्रशम-सवेगी
चाहे तू मुझे
अपना बेटा कह
या न कह
मै तो छोड जाऊँगा उन्हे
एकल हो
बहुत दूर
जय माँ जिनवाणी।

❖

दूर की बात दूर है...

दूर
बहुत दूर
कुछ दिखाई देता है
पर क्या है
ज्ञात नहीं होता
इन चक्षुओं से।
लगता है आज
चरम चक्षु भी
हलके पड गये है मॉ।
इसमे आश्चर्य क्या बेटा।
कलियुग की बात है
दूध नही
चाय पी होगी।
शुद्ध सर्पिष नही
चर्बी युक्त पाया।
खाद्य
सरस नही
नीरस जाया।
भाण्ड,
रजत का नहीं
शिलाजात का ढाला –
जिसे कहता है
आधुनिक स्टील
और

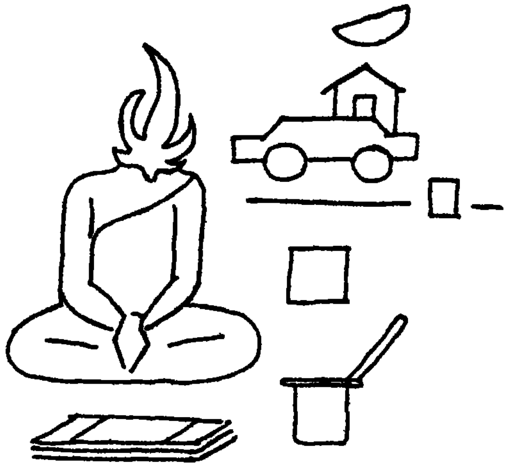


वस्त्र
देशी-खादी नहीं
विदेशी चाहा
उसी का परिणाम है यह
कि
दूर की बात दूर रही
पास का भी नहीं सूझता
तभी तो
तीन बरस के बच्चों के
नयनों पर
उपनयन हैं आज।

❖

मूर्छा

हटात्
लादा हुआ नियम/उपनियम
निरा शून्य मे खेलता है
और
अन्तस् को विकृत कर
वाह्य अभिनय-रत
धर्मात्मा कहलाता है,
परन्तु
अन्तरग
जलता ही रहता सतत
पूर्व की भॉति
औरो की धन-माया
मकान-महल देख।
भले
उसे प्रकट करें
अथवा न करें
सधे-सीधे शब्दो में,



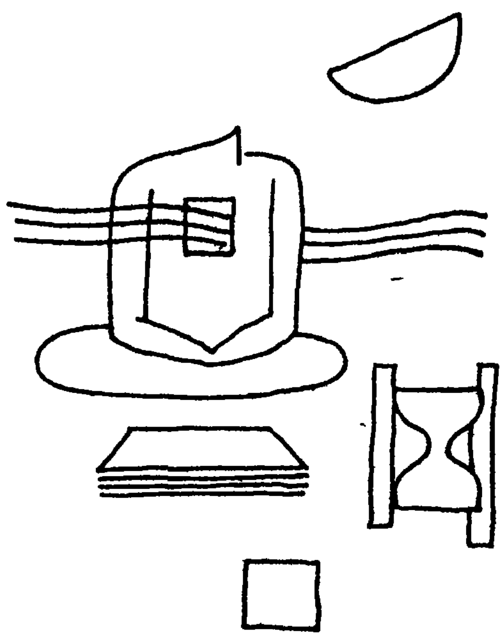
तथापि
आश्चर्य प्रदर्शित कर
दर्शा ही देता है
अविलम्ब
मूर्छा परिणाम से।
ओ हो !
विपुल वैभव !!
बडे सेठ-साहूकार हैं ये
याने ऐश्वर्य प्रति
अभी भी लगाव है
जवान/जीवित,
छोड़ा बाहर से है
भीतर से नहीं।

❖

निकासी

मन के
गन्दे नाले में
अटके हुए
विकारों की निकासी
मन को राहत दे
तन को स्वस्थ्य बनाती है
और
प्रभु भक्ति में लगा
जीवन को उठाती है।

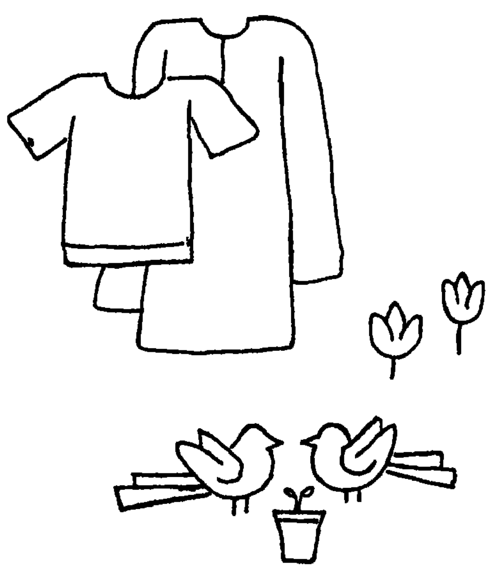
❖



समागम

पोशाकें बदल जातीं हैं
रातों-रात,
मनुष्यो के चेहरे
बदलते है
बातों-बात,
एक रात में
सुलझी बात
उलझ जाती है, और
उलझी हुई बात
सुलझ, सीधी हो जाती है
समागम से।

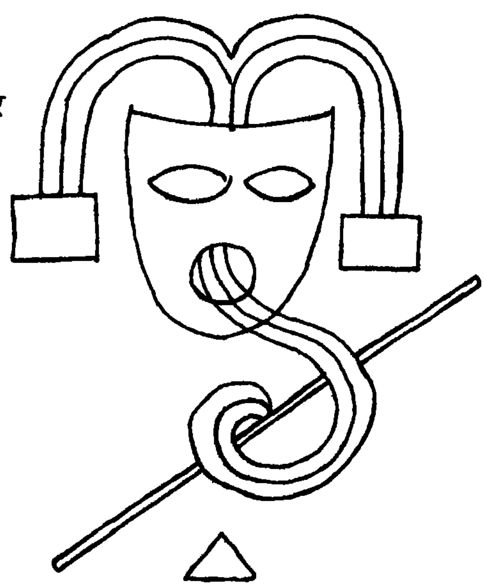
❖



कारखाना

यह है
एक कारखाना
रोज मुखौटों से
आह, और
वासना का धुऑ निकलता,
कर्म,
इसी मे निर्मित होता।
कच्चा-माल, शुभाशुभ भाव
स्वार्थ के हाट से
खरीदा जाता।
इसी कारखाने मे
भोगा जाता
शुभाशुभ-कृत्याकृत्य।
कर्म,
मात्र किए हुए का भेजन हार
एक कोतवाल।

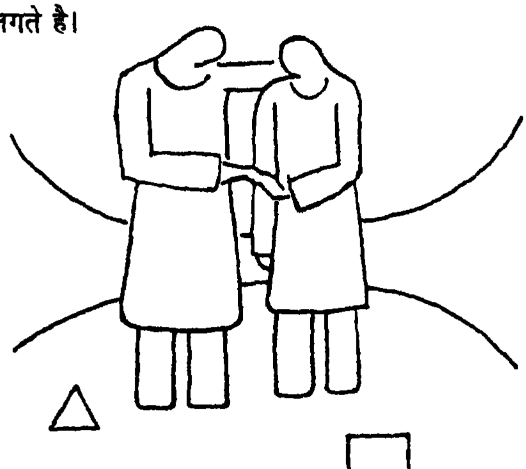
❖



चीन्हें से लगते हैं

अन्चीन्हें व्यक्ति
चीन्हें से लगते हैं
जैसे,
कभी देखा हो,
मिले हो,
बतयाया हो,
हाँ, ठीक ही है
महज पोशाके ही बदलीं है,
अतीत मे थे
ये सब
पति-पत्नि
माता-पिता
भगनी-भ्राता
अट्ठारह नाते,
इसीलिए चीन्हें से लगते है।

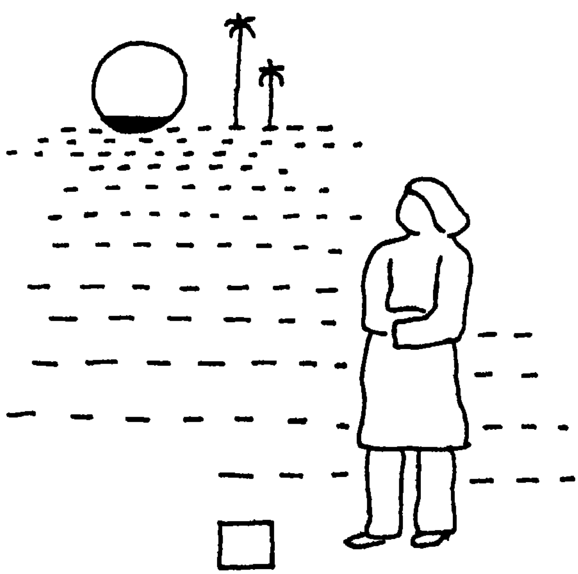
❖



लो, हम आ लगे किनारे!

यह दुरन्त, दुनिर्वार
अपार अनत सागर।
जिसके पार जाना मुश्किल है
इन बाहुओं से,
तदपि मिली
एक तरण-तारण किश्ती
देखो न
हम आ लगे किनारे,
कर आर-पार,
लो, हम आ लगे किनारे।

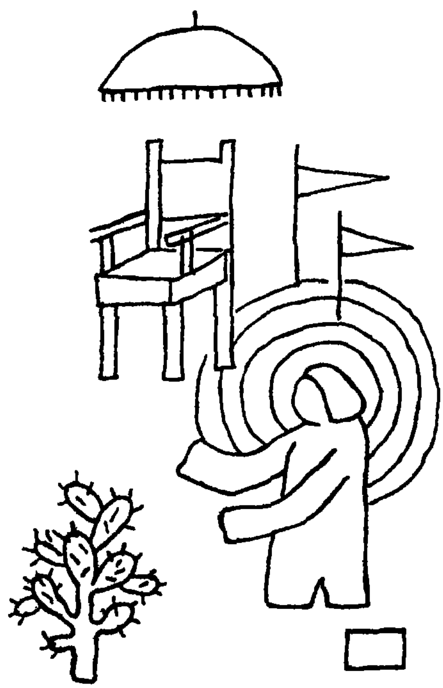
❖



कागदी घोड़े

कागदी घोडे
और
हवाई फायरों पर
विश्वास करने वाला
मन-मस्तिष्क
आपदाओं का विकास कर
सफलताओं का
विनाश कर
चित्तालय मे
चिन्ताओ का
द्रुत प्रवासी वन
चहुँ ओर
दुख पा रहा है।

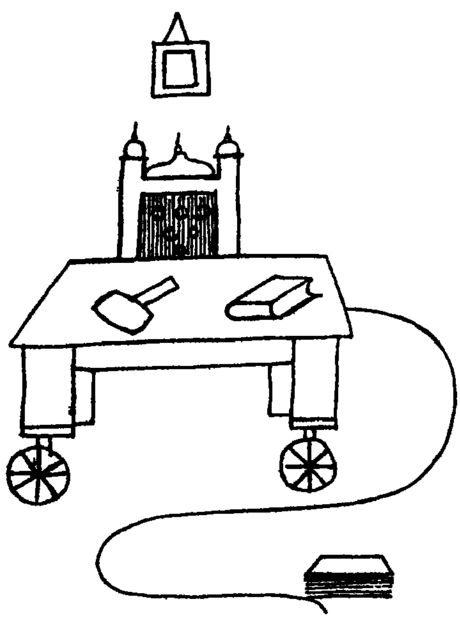
❖



धन की अदालत

आज
अदालत से
विवेक का जनाजा उठ गया है
ज्ञान और
ईमान का
बलिदान हो गया है
और
विवेक के नाम पर
अभिमान
प्रसूत हुआ है
इसीलिए, धनवान
अदालत
घर ले गया है।

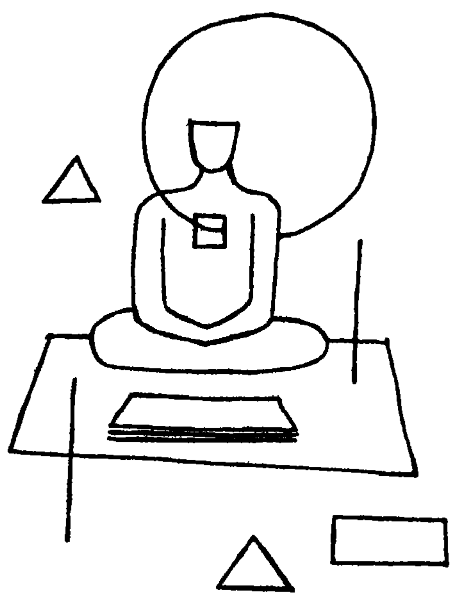
❖



खजाना

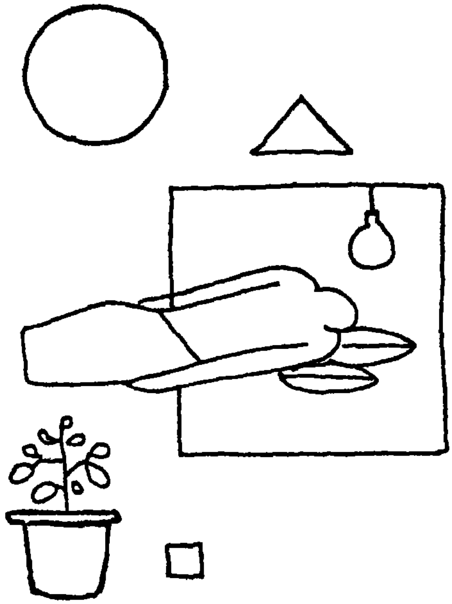
आत्मा
एक ऐसा खजाना है
जिसे भरने के लिए
भौतिक पदार्थों की नही,
जरूरत है तो
केवल
अन्दर झाकने की
अघ त्यागने की,
तब,
धर्म-सचय
सहज होता
और
होता ही जाता।

❖



मूल्यांकन

सोने वाले, जागो!
जाग जाओ!
यह जीवन
यूँ ही न खोओ!
इसका मूल्य समझो
इसकी कीमत जानो
अपनी समझ,
अपना विवेक जगाओ!
तेरा धन गया
तो क्या गया
कुछ भी नहीं,
तेरा स्वास्थ्य गया
तो मानना
कुछ गया है,
किन्तु
यदि चारित्र ढहा
तो समझना
जीवन धन ही गया,
सब कुछ निकल गया,
क्योंकि
चारित्र ही धर्म है,
सबसे बडा।
चारित्र जीवन की कुञ्जी है,
इसे साथ रख

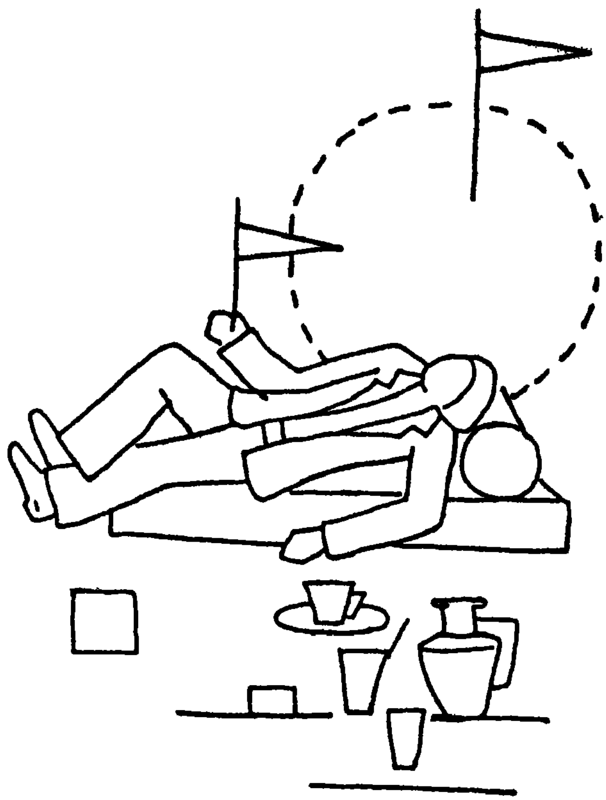


वह, खो-खिसक गयी
तो भटक जाएगा जगत में
जीवन में।
चारित्र है अमूल्य निधि
जीवन धन।
लोक मे
जहाँ-कही
जिस किसी
गली-कूचे
गाँव-शहर से गुजरेगा, तो
इसी से होगा
तेरा मूल्याकन।

❖

भविष्य हमारा है

अर्द्धोन्मीलित शावक, छोना
सूटेड-बूटेड,
धरती माँ की सजी सेज
अधलेटा
कह रहा है
भविष्य हमारा है।
हमारे साथ
हमारे हाथ
अरे! ओ ज्योतिषी!
मेरे भाग्य विधाता, निर्माता
तुम मत बनो,
मेरे भविष्य को
शब्दों के कठघरे मे
मत भेजो।
कथचित्
तू अतीत का
व्याख्याता हो सकता है
भविष्य का नही।
वर्तमान
हमारे हाथ है, साथ है
और
वर्तमान से जुडा
भविष्य हमारा है
हमारे हाथ।



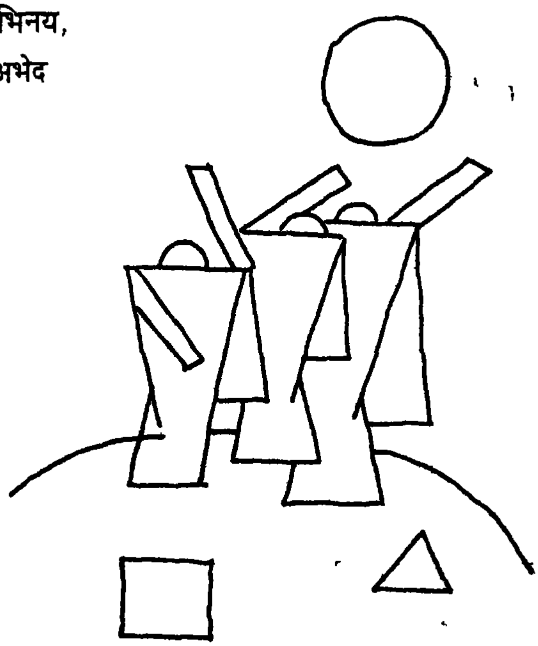
चोरी का परिपाक
जेल-बन्धन।
धर्म का परिपाक
निर्बन्ध, मुक्ति
स्वयम् सिद्ध है,
भविष्य
हमारा-आपका
हमारे-आपके हाथ।

❖

अभिनय

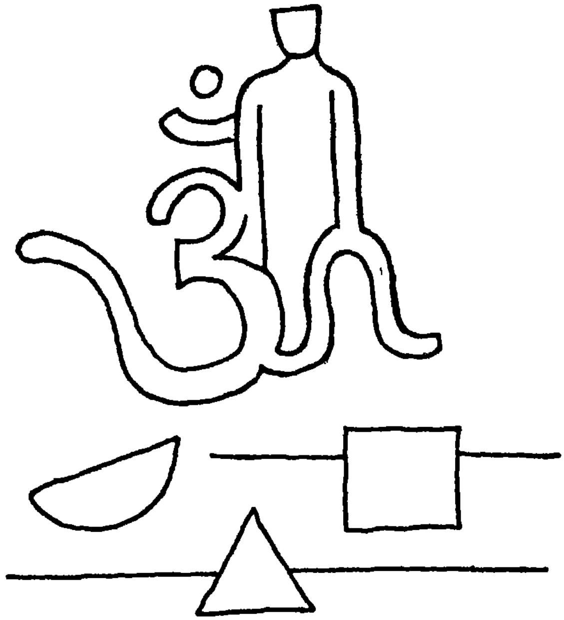
तीन अभिनेत्रियाँ
अभिनय दिखातीं
काल-मच पर
नाचतीं,
गातीं,
आलापतीं,
तीनों का पृथक्
अलग-अलग, साज-सज्जा
अलग-अलग, राग-आलाप
तीनो
भेद से अभेद मे आतीं
एकमेव तीनों का अभिनय,
तीनो का सुर-ताल अभेद
नर-तन लुभातीं
गातीं जातीं
अभिनय दिखातीं
अभिनेत्रियाँ।

❖



मैं ओम मय हूँ

शनै शनै
शरण्य
शर की ओर जा रहा
नजर आ रहा
और शरणागत
कृश शरीर के
शरीरान्त का सकुन देख
स्वय को शक्ति-विहीन महसूसता
रो रहा है बिलख-बिलख
पूर्ण प्रज्ञ होकर।

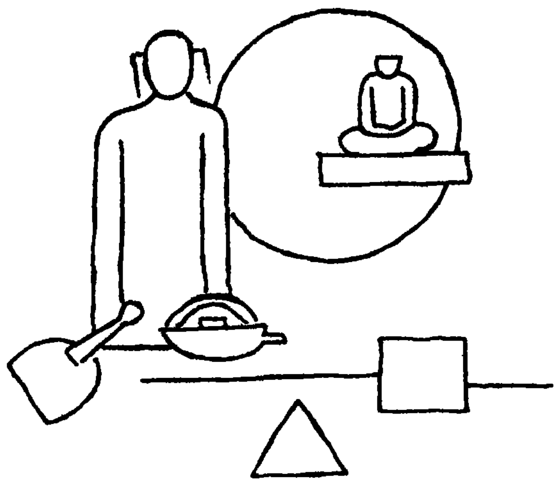


'सुखेन अर्जित ज्ञान
दु खे सति विनश्यते।'
कहाँ गया वो
समयसार और प्रवचनसार
गीता और कुरान
धम्मपद और बाइबिल
सपूर्ण सार ग्रन्थों का।
हाँ,
सर्व-सम्पद् के साथ
अधीत वि-ज्ञान
समय आने पर
तनिक दुख में

सरपट, सर जाता है।
तभी याद आता है
गुरु-मन्त्र
परिषह, उपसर्गों के सार्द्ध
सग्रहीत-ज्ञान
परलोक तक जाता है, और
यदि विस्मृत हो गया
तो स्वल्प प्रयास से
पुनर लौट आता है
याने सही मायने में
प्रज्ञा का अर्थ है
राग-द्वेष का हनन
समता का जनन।
अशेष
गुरु-शिष्य, पुत्र-कलत्र
निखिल प्रपञ्च है लोक के।
मैं एक हूँ
शुद्ध चित पिण्ड हूँ
दर्शन-ज्ञान-मय हूँ
सदा अरूपी हूँ
और
लोक में मेरा
परमाणु मात्र भी नहीं
बस
मैं ओम मय हूँ।
❖

सौभाग्य मेरा

मिला है
एक स्रोत
प्रकाश का
जिसे पाने
अम्बर तज
दिगम्बर हो
आया हूँ यहाँ,
वह अनन्त किरण पुञ्ज
श्रद्धा के गवाक्षों
अनुभूति के क्षणों
अननुभूत होने लगा है,
यद्यपि परोक्ष है वह
तथापि सर्वसम्मत है।
सरिता
अथ मे
सूक्ष्म होती है, और



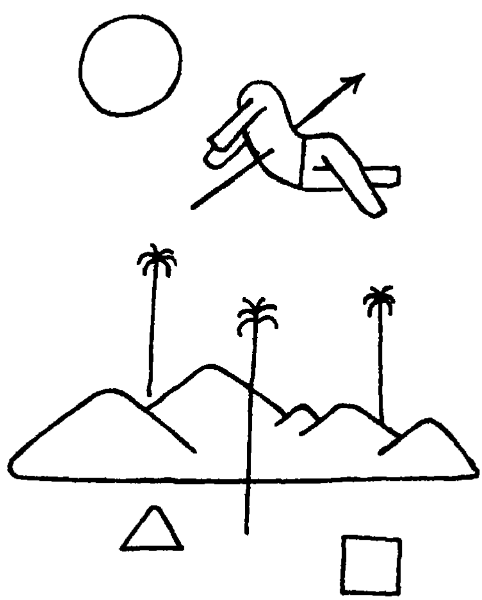
बढते-बढ़ते
अन्त में
सागर से मिल
शान्त हो
अनत बनती है वह।
और हाँ,
मिल गया मुझे भी
विमल सहस्र किरणवान गुरु
बस
हो गया दृढ़ विश्वास
आज नहीं कल
पा लूँगा
विमल केवल
अनत प्रकाश।

❖

खोज रहा है

गहन गहराइयों को
पार कर
आया है मानव
शिखर पर।
अब,
अधर मे जा रहा
वायुयान गति से
और धरती
नीचे, पीछे छूट रही है।
सूरज और चॉद
पाने की होड मे
यह मनु
मान-सानु पर चढ
चेतन को विस्मृत कर
जडो को खोज रहा है।

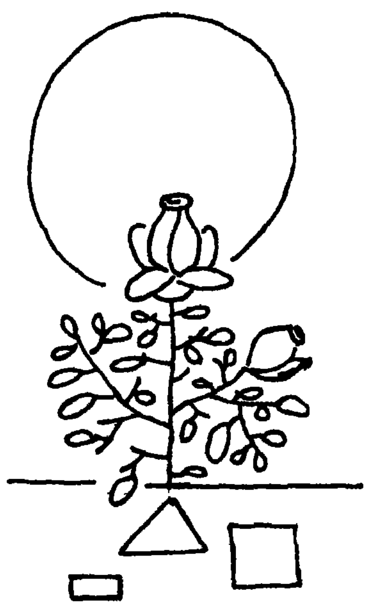
❖



गुणों का पारावार

सूर्य
सहवास नहीं
अब चाहता है एकान्तवास,
द्वन्द्व नहीं
निर्द्वन्द्व भाव,
नित्य एकत्व।
द्वैत नहीं
अद्वैत,
परन्तु
अतीत में कभी ऐसा हुआ?
कि
गुलाब सुमधुर-सुगन्ध के कारण
शूलो में भी सुख पा सका?
क्या टेड़ी-मेढी
काँटे-दार केतकी
कादव मे भी बच सकी?
क्या नवनीत को अतरिक्ष में
पिपीलिकाओं ने छोड़ा?
कदापि नही।
जहाँ सुगन्ध है
गुणो का पारावार है
उसे मुमुक्ष-जन
स्वप्न मे भी नहीं छोडते।

❖



छुवन

हे पुखराज!
लाजवती की क्या बात कहूँ?
लाजवती लाजवती है
छोटे-बड़ों
सभी से शर्माती
सिकुड़ जाती
इतनी सुकुमार है कि
आपकी दृष्टि भी
अभिशाप ठहरती
छुवन की बात ही कहाँ
तुम छलियो की
छलवती छुवन
न सहार पाती
लाजवती
लाजवती।

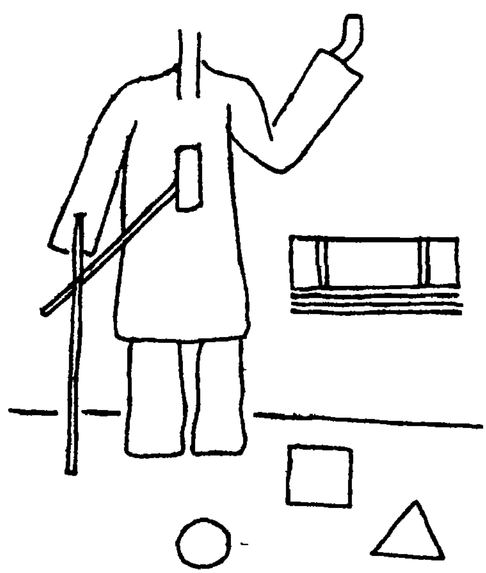
❖



वक्ता

लालची जवान की
लपलपाती जुबान
और लोभी मन
भव भय से
आगम के भाल पर
घूँघट-घालते
और
न देते
अनुवीचि भाषण।
सत्य ही है –
जिस वक्ता की जीविका
श्रोताओ पर जीवित है
वह
नित्य सत्योद्घाटी
न हुआ है
न होगा।

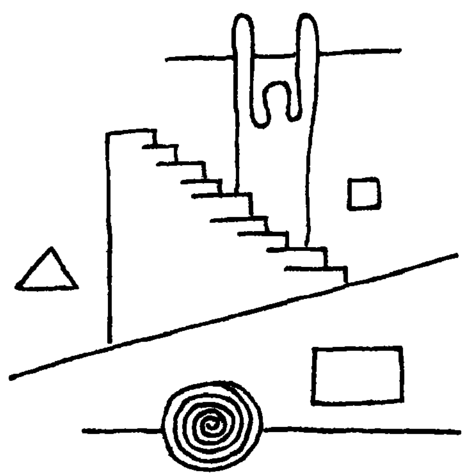
❖



अद्भुत विकास

सागारों! अनगारों!
भीषण भूल है जग की,
अपनी रेखा बढ़ाने
दूसरों की मिटाना
सदा शाप है,
प्रत्येक को
मात्र पीर का विकास।
जहॉ
यश-ख्याति का भाव
मानक् भी मौजूद है
वहॉ
धर्म की सुवासित गध कहाँ?
स्व को बढाने
अन्यों को गिराना
अस्तित्व-हीन करना
सम्यक् कहॉ?
साधक की अतिम भूल
दूसरे की रेखा मिटा
आगे बढ़ना।

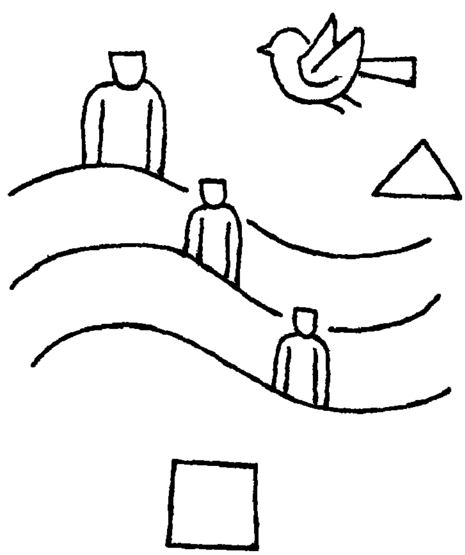
❖



कब तक

भवार्णव मध्य
अफाट् तमसान्ध छाया
जालिम गुलराम
अर्गलाओं से वेष्टित
चढ़ी आँखें
आसमाँ निहारता
बन्धन से घृणास्था,
प्रकोष्ट फादना चाहता
ऊब चुका है
तग हो आया
जेल से।
हाँ,
जीवन जेल से।
कब तक सहूँ यातना
क्या छोर भी आयेगा
जन्म-जरा
और मृत्यु का।

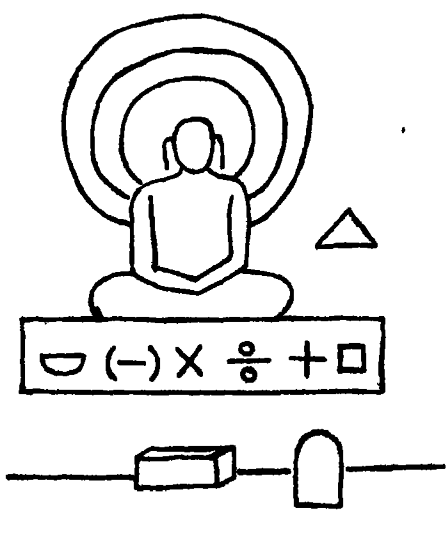
❖



ध्यान देना

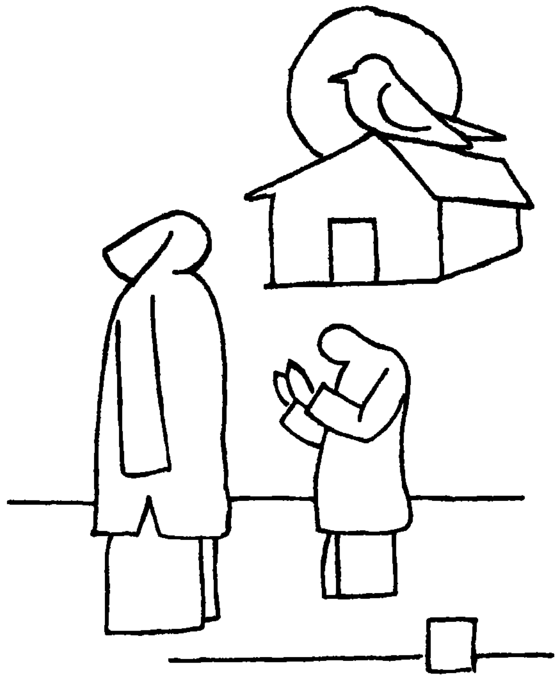
ब्रह्मचर्य ही –
जीवन है
करो
आत्मसात्।
और हाँ
देखो।
गन्दा न हो
छल-प्रपञ्चों से
माया-मत्सर से
अहम् भावों से,
ध्यान देना।
सच कहता हूँ
वरदान सिद्ध होगा
प्राप्त होगा रत्नत्रय
बनेगा सन्त
अरिहन्त, अनत
भवान्त।

❖



मान

प्रभुता का भूखा
मान-सम्मान पा
फूलता है पल में, तन से
हँसता है मन में, मन से
और प्रतिक्षण
गरजता, गुर्राता सारमेय-सा।
पर सच पूछो, तो
वास्तविकता ये है
चाहते हैं मान
सभी, आबाल-वृद्ध,
किन्तु
कभी चाहने वाले
क्या पा सके मान?
क्या कौआ कभी
घर की खपरेल पर बैठ
दस-मजिले भवन की
शिखर पर जा
बन सका महान
पा सका सम्मान?
हाँ,
यदि पाया है, तो
अज्ञ



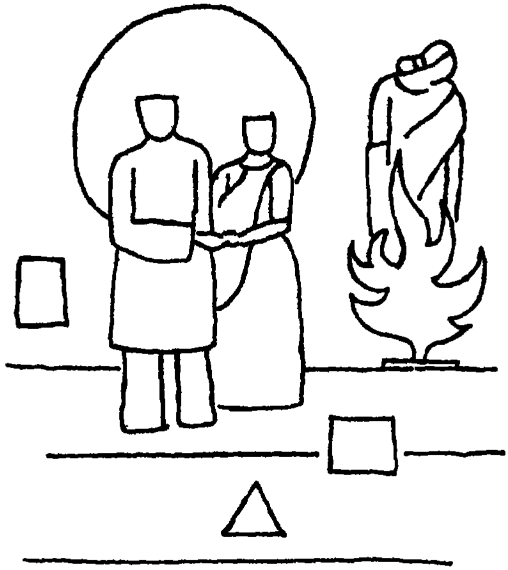
सौ-दो-सौ अङ्को को जोड
प्रमुख बन
कहलाता है महान
नेता-विद्वान,
जैसे –
अधो में काणा महान।
हीरा कभी,
जुबाँ नहीं खोलता, कि
मैं लाख रुपये कीमत का हूँ
या, दस लाख का
सदा गम्भीर।

उसे चाहने वाला
उसका मूल्य आँक
ले जाता हाथों-हाथ
विनीत भाव से;
और गर्भ में बिठा
मानता है अपने-आपको
गौरवशाली प्रधान,
तदवत्
विज्ञों की बात है
न कहते
मैं महान ऐश्वर्यवान
सार्वभौम हूँ,
लेकिन
क्षुद्र/मर्यादा विहीन
नित-मान को मुँह फाड़,
रहते हैं
प्रभुता की भूख भरे
परन्तु,
प्रभुता मिलती है स्वयमेव
विनम्रता से,
जैसे-शिष्य
शिशु बन
बनता है महान
विद्वान।

❖

दहन और भंजन नहीं

भारतीयान्वय में
चार वर्गों में विभक्त
मानवीय जीवन,
मौलिक है –
जो किसी राष्ट्र, या
समाज मे नजर नही आता,
अस्तु,
चेतना को ऊर्ध्वमुखी बनाने की
ब्रह्मचर्य ही परम कला है
जो देह से मुक्त हो
विदेह होना चाहता है
वह सन्यास ले
ब्रह्म की उपासना करे,



किन्तु
देह और आत्मा को
'एक' स्वीकारने वाला
शरीर को
सुख का निधान मानने वाला
काम पुरुषार्थ की ओर प्रेरित/गतिशील हो
जल मन्थन कर
नवनीत चाहता है
काम के नाम पर
दमन और शोषण कर
दहेज में हुण्डी चाहता है
साथ ही
सम्मान और सुमनहार

तरस ! तरस . !! तरस !!!
समाज का कोढ़ दहेज
खोखला करने आया है आज,
जो है –
विकृत काम पुरुषार्थ का प्रतीक।
काम पुरुषार्थ के मायने है विवाह
हाँ, सम्यक् काम पुरुषार्थ
पुरुष के लिए पुरुषार्थ
विवाह है
का-पुरुष के लिए
पुरुष तक पहुँचने का ससख्त अवलम्बन।
वह शाकाहारी
सादा और उच्च विचार जिये
सत्य और अहिंसा का सहारा ले
तो निश्चित ही गृहपति/गृहस्थ
गृह को स्वर्ग बना
यथाविधि-यथातिथि
मोक्ष-वधु का वरण कर सकता है
अपितु
गृहस्थाश्रम में प्रवेश पाते हुए
विवाह की अतिम रस्म
भाँवर/प्रदक्षिणा मे
परम सात स्थानों की प्राप्ति हो
ऐसी भावना/कामना करे।
वे हैं –
परम उत्कृष्ट स्थान

'सज्जातित्व
सद्-गृहस्थ
परिव्रजत्व
सुरेन्द्रत्व
चक्रवर्तित्व
तीर्थकरत्व और
परिनिर्वाण।'
रस्म की छह प्रदक्षिणाओं में
वधु आगे
और वर पीछे होता है
किन्तु अन्तिम सातवीं कक्षा में
वर आगे, वधु पीछे-पीछे
सन्देश देती हुई
चलते चलते कहती है
सातवाँ परम-स्थान
साक्षात् पाने का अधिकार
पुरुष को है
नारी को नही,
तथापि नारी समानान्तर है
पुरुष के इस मेले में।
श्वास की तरह सुखमय
जीने और जिलाने में
सो, नारी का समादर हो
दहन और भजन नहीं।

❖

आत्म परिणाम

हे वीरनाथ भगवान!
यह विश्व
बाह्य वैभव/दिखावट में
बिक गया आज,
जब आप बधन से मुक्त हो
शिवपुर गये
उस दिन
बाह्य-बाह्य में दीपक जला
रग रोगन लगा
द्वार-देहरी सजा
आनन्दित होता
त्यौहार मनाता।



भले गर्भ में
माटी के घरोंदे से
झर रही हो धूल, निरन्तर
जो दबा जाता
न करता प्रकट
अन्दर होली
बाहर दिवाली चलती,
और
जब मदिर जाता
मर्त्यों की भीड में, तो
बडे सुन्दर-सुन्दर नैवेद्य चढ़ा
गौरवान्वित होता
तत्पश्चात्
एकान्त में
बादाम, सुपाडी और कमलगट्टा चढ़ाता
यही तो है प्रभो!
मनुष्य की दौहरी नीति।
जब सामायिक-ध्यान करता, तो
अकड जाता
नर-पुङ्गवों को देख
बैठ जाता मूर्त्तिवत्
और
पुनः शिथिल हो जाता
निर्जन-वात में
डोलता पखा-सा
यत्र-तत्र।
बोलता है अकड़कर
छोटों को देख, धन में

नमता है तनिक में
बड़ों को देख, धन में
आदान-प्रदान की इच्छा से।
तथा च
बोलने मे अन्तर
चलने में अन्तर
देखने में अन्तर
खाने मे अन्तर
अन्तर-ही-अन्तर प्रभो!
एक भी क्रिया स्वस्थ नहीं
कृति कर्म मे भी अन्तर
इसीलिए तो
कर रहा पञ्च-परावर्तन।
जो दौहरी नही
तिहरी नीति का परिणाम है अन्तेवासिन्!
मन-वाणी और शरीर
तीनों की तीन तर्ज।
गगा, जमुना, सरस्वती
तीन दिशा मे तीन।
सुनो बेटे!
लोक ने
सगम को बडा पवित्र माना है
जब
सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र
एक हो
अभेद में आते है
तब
वस्तुत: कहलाता है

मोक्षमार्ग।
विदित रहे,
पित्त से पीडित प्राणी
जल मिश्री-बादाम के
पृथक् पृथक् योग से
तृप्त नहीं होते।
उन्हें पीस मिश्रण कर
अवपान करते हैं जब
होता है तृप्ति का अनुभव
मन को तब,
और
निकल जाता है
वपुगत पित्त।
पिपरमेन्ट, कर्पूर, अजवाइन का फूल
अलग-अलग पात्र में स्थित
अमृत धार नही बनते
या कि सोचो, बन जाये
पिपरमेन्ट-कर्पूर से
कर्पूर-अजवाइन फूल से
पिपरमेन्ट और अजवाइन फूल से
किन्तु नहीं
तीनों के सम्मिश्रण, समान योग से।
यही है मोक्षमार्ग
बाह्य-अन्तर जगत एक-सा
दिखावा नहीं, यथार्थ
तभी तुम हम-सम
बन पाओगे भगवान्।

❖